सामायिक, आलोचना, प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान

प्रो. (डॉ.) सोहन राज तातेड़,

पूर्व कुलपति सिंघानिया विश्वविद्यालय, राजस्थान

सामायिक का अर्थ है समय या आत्मा में स्थित होना, जीवन जीने के लिए धर्मानुष्ठान करना। किसी के साथ यदि हम बुरा व्यवहार करते है और उसे हमारे व्यवहार से कष्ट होता है तो हमें दोष लगता है, पाप लगता है। इन सबसे बचने के लिए अच्छे कार्य का अनुष्ठान करना चाहिए। सावद्ययोग से बचने के लिए सामायिक एकमात्र पूर्ण और पवित्र अनुष्ठान है। जिस व्यक्ति की आत्मा संयम, नियम और तप में जागरूक है, उसके सामायिक होता है। जो त्रस और स्थावर सभी प्राणियों में समभाव रखता है, उसके सामायिक होता है। सभी प्राणियों में समभाव रखना ही सामायिक है। सम्यक् दर्शन, ज्ञान, चारित्र और तप के साथ जो जीव का ऐक्य है वह 'समय' कहा जाता है और उस समय को ही सामायिक कहते हैं। जिन्होंने उपसर्ग और परीषह को जीत लिया है, जो भावना और समितियों में उपयुक्त हैं, यम और नियम में उद्यमशील हैं, वे जीव सामायिक में परिणत हैं। राग–द्वेष का निरोध करके सभी कार्यों में समताभाव होना और द्वादशांग तथा चतुर्दश पूर्वरूप सूत्रों में श्रद्धान करना सामायिक है। जो साधक पापयोग से विरत है, रूपादि विषयों में इन्द्रियों को न जाने देने से जो जितेन्द्रिय है, ऐसे संयमी जीव ही सामायिक में स्थित होते हैं। ऐसा जानकर संयमी व्यक्ति आत्मा में स्थित होता है अर्थात् सामायिक करता है। सामायिक धारण करने की शब्दावली है– मैं सामायिक करता हूं, यावज्जीवन सब प्रकार के सावद्य–योग का प्रत्याख्यान करता हूं, उससे निवृत्त होता हूं, उसकी निन्दा करता हूं, अपने आपका त्याग करता हूं। मैंने दिनभर में यदि व्रतों में अतिचार किया हो, सूत्र अथवा मार्ग के विरूद्ध आचरण किया हो, दुर्ध्यान किया हो, धर्म की विराधना की हो तो वह सब मिथ्या हो। दोषों से छुटकारा पाये बिना मुक्ति नहीं हो सकती। मानसिक, वाचिक और कायिक प्रवृत्तियों द्वारा किसी भी प्राणी को कष्ट नहीं देना चाहिए। अपने दोषों को स्वीकार करना आलोचना है। आलोचना का अर्थ है अपना अन्तर्निरीक्षण करना। दिन भर मैंने क्या–क्या किया? यदि मुझसे किसी प्रकार की त्रुटि हुई हो तो उसके लिए मैं प्रायश्चित करता हूं। दोषों से निवृत्ति को प्रतिक्रमण कहते हैं। जिस क्रिया के द्वारा किए हुए दोषों,

अपराधों एवं पापों का प्रक्षालन करके जीव शुद्ध होता है, वह प्रतिक्रमण कहलाता है। द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव पूर्वक किए हुए अपराधों का मन, वचन और काया से निन्दा आत्मालोचन या अपनी भूलों के प्रति अनादर का भाव प्रगट करना और गर्हा गुरु के समक्ष अपनी भूलों को प्रगट करना के द्वारा शोधन करना प्रतिक्रमण है। प्रतिक्रमण के पर्यायवाची आठ नाम हैं– प्रतिक्रमण–सावद्ययोग से विरत होकर आत्मशुद्धि में लौट आना, प्रतिचरणा–अहिंसा, सत्य आदि संयम में सम्यक् रूप से विचरना, परिहरणा–सभी तरह के अशुभयोगों का त्याग, वारणा–विषय–भोगों से स्वयं को रोकना, निवृत्ति–अशुभ प्रवृत्ति से निवृत्त होना, निन्दा–पूर्वकृत अशुभ आचरण के लिए पश्चाताप करना, गर्हा–आचार्य, गुरु आदि के समक्ष अपने अपराधों की निंदा करना, शुद्धि–अतीत में किए गए दोषों की आलोचना, निंदा, गर्हा तथा तप के द्वारा आत्मशोधन करना। प्रतिक्रमण से जीव को क्या प्राप्त होता है? इसके उत्तर में कहा जा सकता है कि प्रतिक्रमण से जीव स्वीकृत व्रतों के छिद्रों को बंद कर देता है। व्रत–छिद्रों को बन्द कर देने वाला जीव आस्रवों का निरोध करता है, उसका चारित्र–अतिचारों से रहित होता है, वह प्रवचनमाताओं के आराधन में सतत सावधान रहता है तथा सम्यक् समाधियुक्त होकर विचरण करता है। प्रतिक्रमण व्रतों के अतिचारों को दूर करने का महत्त्वपूर्ण उपाय है। इसलिए सभी साधकों को प्रतिक्रमण करना चाहिये। सभी प्रतिक्रमण आलोचनापूर्वक होता है, तब उससे दोषशुद्धि होती है। प्रतिक्रमण करते समय शरीर, आसन आदि का पिच्छिका से प्रमार्जन कर लेना चाहिये। आज नहीं, दूसरे या तीसरे दिन अपराधों को कहूँगा, इस रूप से टालते हुये कालक्षेप करना ठीक नहीं है। जो साधु भाव से संयुक्त होकर प्रतिक्रमण पदों का उच्चारण करता है अथवा सुनता है वह बहुत से कर्मों की निर्जरा कर लेता है और अपराधों का परिहार कर लेता है। अयोग्य के ग्रहण का परित्याग करना प्रत्याख्यान है। भविष्य काल के प्रति मर्यादा के साथ अशुभयोग से निवृत्ति और शुभयोग में प्रवृत्ति का आख्यान करना प्रत्याख्यान है। नाम, स्थापना, द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव इन छह निक्षेपों के विषय में शुभ, मन, वचन और काय के द्वारा भविष्य और वर्तमान काल के लिए दोषों का त्याग करना प्रत्याख्यान है। समस्त वाचनिक विकल्पों का त्याग करके तथा अनागत शुभाशुभ का निवारण करके जो साधक आत्मा को ध्याता है, उसे प्रत्याख्यान होता है। जो साधक समस्त कर्म जनित वासनाओं से रहित

आत्मा को देखता है, उनके पापागमन के कारणभूत भावों का त्याग प्रत्याख्यान है। यह संसार अनादि है। यह स्वकृत है। इसका कोई कर्त्ता नहीं है। मानव इस अनादि संसार में सबसे बुद्धिमान् प्राणी है। उसकी आवश्यकतायें अनन्त हैं। उसके इच्छाओं की पूर्ति नहीं हो सकती, क्योंकि इच्छायें आकाश के समान अनन्त है। जैसे आग में घी डालने से अग्नि शान्त नहीं होती बल्कि प्रज्ज्वलित ही होती है उसी प्रकार एक इच्छा की पूर्ति होने पर दूसरी जन्म ले लेती है, जिसके कारण मानव के मन में सदैव अशांति बनी रहती है। अशांति को दूर करने का सबसे अच्छा उपाय है मन को स्थिर करना और उनका प्रत्याख्यान करना। प्रत्याख्यान के द्वारा साधक अशान्ति और तृष्णा को नष्ट कर देता है।